Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VIII, Issue No. XV, July-2014, ISSN 2230-7540

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

स्वामी विवेकानन्द के विचारों का आद्योपान्त अध्ययन एवं उनसे संबंधित साहित्य का अवलोकन तथा विश्लेषण

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VIII, Issue No. XV, July-2014, ISSN 2230-7540

स्वामी विवेकानन्द के विचारों का आद्योपान्त अध्ययन एवं उनसे संबंधित साहित्य का अवलोकन तथा विश्लेषण

Mani Ram

Research Scholar, Singhania University, Rajasthan

सारांश – विवेकानन्द जी के अनुसार भी ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। ब्रह्म नित्य, असीम व अनंत सत्ता है, अतः उसे बाह्य व सीमित जगत् में नहीं खोजा जा सकता। अनंत की खोज अनंत में ही करनी चाहिए। हमारी अंतवर्ती आत्मा ही एकमात्र अनंत चेतना है, अतः उसी में परमात्मा की खोज की जा सकती है। कठोपनिषद् का उद्धरण देते हुए स्वामी जी ने लिखा है, सांसारिक मनुष्य बाहरी भोगवादी वस्तुओं के पीछे दौड़ते हैं। इसीलिए वे सब ओर व्याप्त मृत्यु के पाश में बंध जाते हैं, किंतु ज्ञानी मनुष्य अमृत्व की अनुभूति को जानकर अनित्य व नाशवान वस्तुओं में नित्य तथा श्शाश्वत वस्तु की खोज नहीं करते। उपनिषद् के उद्धरण के द्वारा ही उन्होंने स्पष्ट किया है, ''जिस प्रकार एक ही अग्नि जगत् में प्रविष्ट होकर बाह्य वस्तु के रूप–भेद से भिन्न–भिन्न रूप धारण करती है, उसी प्रकार सब भूतों की वह एक अंतरात्मा विभिन्न वस्तुओं के भेद से उस वस्तु का रूप धारण किये हुए है और सबसे अलग भी है।[2] जिस प्रकार एक ही वायु जगत् में प्रविष्ट होकर विभिन्न वस्तुओं के भेद से तद्रूप हो गई है।

ईशोपनिषद् का उद्धरण देते हुए स्वामी जी ने लिखा है, 'ब्रह्म अनंत सत्ता, अनंत ज्ञान व अनंत आनंद है। ब्रह्म चंचल है, स्थिर है, दूर है, निकट है, वह सबके भीतर है, फिर सबसे बाहर भी है। जो आत्मा के भीतर सब भूतों में आत्मा का दर्शन करते हैं, वे कुछ भी छिपाने की आशा नहीं करते। जिस अवस्था में ज्ञानी व्यक्ति के लिए समस्त भूत आत्मस्वरूप हो जाते हैं, उस अवस्था में एकत्वदर्शी पुरुष को शोक अथवा मोह नहीं हो सकता है।' विवेकानन्द आत्मा और परमात्मा में पूरक संबंध मानते थे। इसे उन्होंने एक सुंदर रूपक द्वारा समझाने की चेष्टा की है। यह रूपक उन्होंने मुंडकोपनिषद् 1 (3/1/1–2) से लिया है। उन्होंने इस रूपक द्वारा जीवात्मा और परमात्मा के भेद में समझाया है।

---------------------------------x---------------------------------

भूमिका

भारत में धर्म को समाज का आधार एवं व्यक्तिगत जीवन दोनों अर्थों में लिया गया है। व्यक्तिगत जीवन के इहलौकिक एवं परलौकिक दोनों पक्षों से धर्म का संबंध है। धर्म मनुष्य एवं ईश्वर के संबंध से तो संबंधित तो है ही किंतु वह उसी तक सीमित नहीं है। यह मनुष्य के सामाजिक जीवन को भी नियंत्रित करता है। इसीलिए पश्चिमी विद्वानों की भांति परम्परावादी भारतीय मनीषियों ने धर्म एवं आचार–शास्त्र में भेद नहीं किया। उनके अनुसार धर्म के क्षेत्र में आचार–शास्त्र का समावेश रहता है। भारतीय परिवेश में धर्म शब्द की व्यापकता को समझने के लिए इस संबंध में कुछ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार कर लेना आवश्यक है।

साहित्य–पुनरावलोकन

ऋग्वेद में 'धर्म' शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर भिन्न–भिन्न रूपों में किया गया है। इसी ग्रन्थ में 'ऋत्' और 'सत्य' की धारणाओं का विवेचन हुआ है। 'ऋत्' और 'सत्य' के सिद्धान्त का अभिप्राय सारे विश्व–प्रपंच में व्याप्त उसके नैतिक आधार से है। इस आधार के दो रूप हैं, बाह्य जगत् की सारी प्रक्रिया विभिन्न प्राकृतिक नियमों के अधीन चल रही है। इसी को ऋत् कहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के जीवन के प्रेरक जो भी नैतिक आदर्श हैं, उन सबका आधार सत्य है। वैदिक आदर्श ऋत और सत्य को एक ही भौतिक तथ्य के दो रूप मानता है। ऋग्वेद के बहुत से मंत्र अथर्ववेद में मिलते हैं, जिनमें 'धर्मन्' शब्द का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में 'धर्म' शब्द का प्रयोग 'धार्मिक क्रिया संस्कार करने से अर्जित गुण' के अर्थ में हुआ है।[5] ऐतरेय–ब्राह्मण में 'धर्म' शब्द सकल धार्मिक कर्त्तव्यों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

उपनिषदों में धर्म शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से नैतिक आदर्श अथवा सदाचार के अर्थ में हुआ है, जैसे ''(हे स्नातक) तुम सत्य बोलो और धर्म का आचरण करो।'' वाणी ही धर्म और अधर्म के स्वरूप को अभिव्यक्त करती है, जिसके अनुसार धर्म की तीन शाखायें मानी गई हैं– यज्ञ, अध्ययन एवं दान, अर्थात् आचार्य के गृह में अंत तक रहना। यहां 'धर्म' शब्द आश्रमों के विलक्षण कर्त्तव्यों की ओर संकेत कर रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं, 'धर्म' शब्द का अर्थ समय–समय पर परिवर्तित होता रहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् में 'धर्म' शब्द का प्रयोग आध्यात्मिक, नैतिक तथा भौतिक जगत् के संचालक मौलिक तत्व के रूप में हुआ है, जैसे 'यह धर्म सब भूतों का मधु है, और सब वस्तुयें इस धर्म की मधु हैं और जो इस धर्म में प्रकाशमय अमृतमय पुरुष है और जो यह अध्यात्म धर्म संबंधी प्रकाशमय–अमृतमय पुरुष है, वह आत्मा ही है। यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सत्य है।''

उक्त परिपादन में धर्म और सत्य को एक रूप में देखा गया है। सत्य के समान धर्म भी समस्त बाह्य और आन्तरिक पदार्थों के स्वरूप का सम्पादन करने के साथ–साथ उनकी अपने स्वरूप में स्थिति का नियामक भी है। अतः आगे इसी उपनिषद् में धर्म और सत्य की अभिन्नता का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है, यह जो धर्म है वह सत्य ही है, इसीलिए सत्य बोलने वाले के प्रति

कहा जाता है, ''यह धर्म कह रहा है,'' तथा धर्म पर आरूढ़ व्यक्ति के प्रति कहा जाता है, ''वह सत्य कह रहा है,'' क्योंकि निश्चय ही धर्म और सत्य में भेद नहीं है, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।''

गीता में धर्म शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रसंग में हुआ है, जैसे स्वधर्मेनिधनं श्रेयः। धर्मशास्त्र साहित्य में धर्म शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मनु ने तीन प्रकार से धर्म को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है, परम आचार धर्म है, धृति, क्षमा आदि धर्म के दस लक्षण हैं, वेद, स्मृति, सदाचार तथा अपनी आत्मा को प्रिय लगना ये धर्म के चार साक्षात् लक्षण हैं। पूर्वमीमांसासूत्र में जैमिनी ने धर्म को 'वेदविहित प्रेरक' लक्षणों के अर्थ में स्वीकार किया है, अर्थात् वेदों में प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चलना ही धर्म है। धर्म का संबंध उन क्रिया–संस्कारों से है, जिनसे आनन्द मिलता है और जो वेदों द्वारा प्रेरित एवं प्रशंसित है। वैशेषिक सूत्रकार ने धर्म की परिभाषा दी है– ''धर्म वही है जिससे आनन्द एवं निःश्रेयस की सिद्धि हो।'' महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म के विधि और निषेध दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर धर्म का निरूपण किया गया है। अपने विधि पक्ष में धर्म शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का साधन है। अपने निषेध के पक्ष में धर्म वह है जो किसी को क्लेश न पहुंचाये। बौद्धधर्म साहित्य में धर्म शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कभी–कभी इसे भगवान् बुद्ध की सम्पूर्ण शिक्षा का द्योतक माना गया है। इसे अस्तित्व का एक तत्त्व अर्थात् जड़ तत्त्व, मन एवं शक्तियों का एक तत्त्व भी माना गया है।

शोध पद्धति

स्वामी विवेकानन्द के विचारों का आद्योपान्त अध्ययन करना प्रस्तुत शोध का ध्येय है और यह अध्ययन हमारे इस विचार की पुष्टि करता है कि उनके विचारों के आधार पर भारत की संस्कृति, तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिस्थितियों में विद्यमान है। उनसे प्रेरित होकर ही स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने विचारों का प्रतिपादन किया। इस तथ्य की पुष्टि विवेकानन्द की रचनाओं एवं उनसे संबंधित साहित्य का अवलोकन तथा विश्लेषण करके की जा सकती है। सर्वप्रथम विवेकानन्द के विचारों पर उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनकी दार्शनिक कृतियों में उपनिषदों के विशेषतः ईश, छांदोग्य, श्वेताश्वतर, कठोपनिषद् एवं मुंडकोपनिषद् के उद्धरण मिलते हैं। उनकी रचनाओं के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि विवेकानन्द ने उपनिषदों का केवल अध्ययन ही नहीं किया था वरन् उनके प्रतिपाद्य विषय को आत्मसात् कर उसे व्यवहार में उतारने का प्रयत्न भी किया। इस शोध कार्य में हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि विवेकानन्द जी अपने किन विचारों के निर्माण के लिए उपनिषद् के ऋणी हैं।

वृहदारण्यक उपनिषद् का यह कहना है कि 'सन्मात्रं हि ब्रह्म।' इसी तरह विवेकानन्द जी के अनुसार भी ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। ब्रह्म नित्य, असीम व अनंत सत्ता है, अतः उसे बाह्य व सीमित जगत् में नहीं खोजा जा सकता। अनंत की खोज अनंत में ही करनी चाहिए। हमारी अंतवर्ती आत्मा ही एकमात्र अनंत चेतना है, अतः उसी में परमात्मा की खोज की जा सकती है। कठोपनिषद् का उद्धरण देते हुए स्वामी जी ने लिखा है, सांसारिक मनुष्य बाहरी भोगवादी वस्तुओं के पीछे दौड़ते हैं। इसीलिए वे सब ओर व्याप्त मृत्यु के पाश में बंध जाते हैं, किंतु ज्ञानी मनुष्य अमृत्व की अनुभूति को जानकर अनित्य व नाशवान वस्तुओं में नित्य तथा श्शाश्वत वस्तु की खोज नहीं करते। उपनिषद् के उद्धरण के द्वारा ही उन्होंने स्पष्ट किया है, ''जिस प्रकार एक ही अग्नि जगत् में प्रविष्ट होकर बाह्य वस्तु के रूप–भेद से भिन्न–भिन्न रूप धारण करती है, उसी प्रकार सब भूतों की वह एक अंतरात्मा विभिन्न वस्तुओं के भेद से उस वस्तु का रूप धारण किये हुए है और सबसे अलग भी है। जिस प्रकार एक ही वायु जगत् में प्रविष्ट होकर विभिन्न वस्तुओं के भेद से तद्रूप हो गई है।

ईशोपनिषद् का उद्धरण देते हुए स्वामी जी ने लिखा है, 'ब्रह्म अनंत सत्ता, अनंत ज्ञान व अनंत आनंद है। ब्रह्म चंचल है, स्थिर है, दूर है, निकट है, वह सबके भीतर है, फिर सबसे बाहर भी है। जो आत्मा के भीतर सब भूतों में आत्मा का दर्शन करते हैं, वे कुछ भी छिपाने की आशा नहीं करते। जिस अवस्था में ज्ञानी व्यक्ति के लिए समस्त भूत आत्मस्वरूप हो जाते हैं, उस अवस्था में एकत्वदर्शी पुरुष को शोक अथवा मोह नहीं हो सकता है।' विवेकानन्द आत्मा और परमात्मा में पूरक संबंध मानते थे। इसे उन्होंने एक सुंदर रूपक द्वारा समझाने की चेष्टा की है। यह रूपक उन्होंने मुंडकोपनिषद् 1 (3/1/1–2) से लिया है। उन्होंने इस रूपक द्वारा जीवात्मा और परमात्मा के भेद में समझाया है।

''एक पेड़ पर दो सुंदर पक्षी बैठे हैं। उनमें से एक (ऊपर वाला) शांत, स्थिर एवं भव्य है। नीचे रहने वाला (जीवात्मा) मीठे–कड़वे फल चख रहा है और सुख–दुःख भोग रहा है। इस रूपक द्वारा विवेकानन्द ने यह समझाने की चेष्टा की है कि ऊपर वाला पक्षी ईश्वर, परमात्मा अथवा जगत् प्रभु है और नीचे वाला पक्षी, जीवात्मा, इस जगत् के सुख–दुःख रूपी मीठे–कड़वे फलों का भोगी है। बीच–बीच में जीवात्मा के ऊपर प्रबल आघात आ पड़ता है। वह कुछ दिनों के लिए फलभोग बंद कर उस अज्ञात ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। उसके हृदय में सहसा ज्ञान–ज्योति का प्रकाश होता है। तब वह समझता है, और उसको अहसास होता है कि यह संसार केवल झूठा दृश्य–जाल है, परंतु धीरे–धीरे इंद्रियां फिर उसे बहिर्जगत् में उतार लाती हैं और पूर्व की भांति फिर वह जगत् के अच्छे–बुरे फलभोगों में लीन हो जाता है। पुनः एक अत्यंत कठोर आघात होता है और फिर उसका हृदय–मंडल दिव्य प्रकाश के लिए उन्मुख हो जाता है। इस तरह धीरे–धीरे वह ईश्वर की ओर अग्रसर होता है, और जितना ही वह निकटवर्ती होने लगता है, उतना ही वह देखता है कि उसके अहंकारी 'मैं' अपने आप ही विजर्सित/लुप्त/तिरोहित होता जा रहा है। जब वह खूब निकट आता है, तब देख पाता है कि वह स्वयं ही ईश्वर है।

कठोपनिषद् को उद्धृत करके स्वामी जी ने लिखा है, '' वह परम् ब्रह्म है– जिसके आदेश से वायु चलती है, अग्नि दहकती है, बादल बरसते हैं और मृत्यु पृथ्वी पर नाचती है। वह फिर कहते हैं , ''सूर्य उस परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकता, न चंद्रमा या तारागण ही, वह विद्युत्प्रभा भी परमेश्वर को उद्भासित नहीं कर सकती। तब इस सामान्य अग्नि की बात ही क्या! ये सभी परमेश्वर के कारण प्रकाशित होते हैं।

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानन्द ने 'हिंदू धर्म' में ईश्वर की शक्ति का वर्णन बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। अपने विचारों के निर्माण में उन्होंने उपनिषदों को आधार बनाया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारत में विवेकानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर षष्ठ संख्या, 1992, पृ. 2/3।

www.ignited.in

2. स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी विवेकानन्द और जनसाधारण, 'सेविनर' रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द– सोसायटी, जमशेदपुर, फरवरी– 1994, पृ. 37–38।

3. शंकरी प्रसाद बसु, स्वामी विवेकानन्द और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन, कन्याकुमारी।

4. वही, पृ. 26।

5. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड– 8, पत्रावली, अद्वैत आश्रम, मायावती पिथौरागढ़, कुमाऊँ, पृ. 352।

6. डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, शंख सिंदूर शीर्षक, हिन्दुस्तान रविवासरीय, नई दिल्ली, 25 जून, 1995, पृ. 3।

7. शंकरी प्रसाद बसु, स्वामी विवेकानन्द और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन, कन्याकुमारी, विवेकानन्द प्रकाशन केन्द्र, 1991, पृ. 24–25।

8. विवेकानन्द साहित्य, दशम खण्ड, अद्वैत आश्रम मायावती, पिथौरागढ़, कुमाऊँ, हिमालय, द्वितीय संस्करण, 1989, पृ. 117।

9. शंकरी प्रसाद बसु, स्वामी विवेकानन्द और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, कन्याकुमारी, विवेकानन्द प्रकाशन केन्द्र, 1992, पृ. 22।